अध्याय–3

भारत में मध्यवर्ग का उदय और विकास

1. वर्णवादी व्याख्या
2. सामाजिक वर्ग
3. सामाजिक स्तरीकरण
4. पूँजीवादी देश

अध्याय–3

भारत में मध्यवर्ग का उदय और विकास

भारतीय समाज वर्ण और जाति–प्रथा की कभी न टूटने वाली श्रृंखलाओं में बँधा हुआ होने के कारण समाजशास्त्रीय दृष्टि से अत्यन्त जटिल समाज कहा जाता है। समाज को चार वर्णों–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में बाँटा गया और हर वर्ण के लिए कुछ नियम व कर्त्तव्य निर्धारित किये गए। साथ ही हर वर्ण से यह आशा रखी जाती थी कि वह अपने कर्त्तव्यों को पूर्ण रूप से निभाएँगे। वर्णवादी व्याख्या से पूर्व हमें वर्ण शब्द का अर्थ जानना अत्यन्त आवश्यक होगा कि वर्ण क्या है?

'जाति' और 'वर्ण' की संकल्पनाओं को प्रायः एक ही समझा जाता है और एक ही अर्थ में इसका प्रयोग होता है। लेकिन ऐसा ठीक नहीं है क्योंकि 'जाति' और 'वर्ण' दोनों की संकल्पनाएँ पृथक् हैं। साहित्यिक दृष्टिकोण से देखने पर 'वर्ण' शब्द 'वृ' धातु से बनता है जिसका अर्थ है चुनना। यह भी कहा जा सकता है कि इस अर्थ चुनना से किसी पेशे या व्यवसाय का चुनाव करने का तात्पर्य होता है या उस समूह को परिभाषित करता है जो समाज द्वारा निर्धारित कुछ निश्चित कार्यों को करता है।

वर्णवादी व्याख्या

डॉ0 रवीन्द्रनाथ मुखर्जी, डॉ0 भरत अमृकल के अनुसार–"सांख्यदर्शन में वर्ण शब्द को एक विशेष प्रकार के रंग से सम्बद्ध कर दिया गया है और प्रत्येक वर्ण को एक विशेष प्रकार का रंग माना गया है।"[1] अतः रंग के आधार पर वर्ण को अलग–अलग किया गया है।

डॉ0 मुखर्जी के अनुसार–"सांख्यदर्शन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि रूप या रंग का नाम ही वर्ण है। सम्भवतः इसी कारण पुराणों में भी कई स्थानों में शुक्ल ब्राह्मण, रक्त क्षत्रिय, पीत वैश्य और कृष्ण शूद्र लिखा मिलता है।"[2] इस प्रकार सांख्यदर्शन में रूप या रंग का नाम ही वर्ण है।

डॉ0 मुखर्जी लिखते हैं–"वर्ण सामाजिक विभाजन की वह व्यवस्था है। जिसका आधार पेशा, कर्म या गुण है।"[3] अतः वर्ण विभाजन एक सामाजिक व्यवस्था है जिसे हम मुख्य रूप से कर्म, गुण आदि से सम्बद्ध कर सकते हैं। इस प्रकार प्राचीन समय में सामाजिक व्यवस्था को दृष्टिगत रखते हुए तथा संगठन को सुनियोजित रूप से चलाने के लिए ज़रूरी था कि समाज में उपयुक्त रूप से कार्यों का विभाजन किया जाये जिसके फलस्वरूप एक व्यक्ति या समूह एक दूसरे के कार्यों में अनावश्यक रूप से हस्तक्षेप न कर सकें। इस प्रकार इस उद्देश्य को दृष्टि में रखकर कर्मों और गुणों के आधार पर समाज के सदस्यों को चार समूहों में बाँटने की योजना बनायी गयी, उसी को हम वर्ण–व्यवस्था की संज्ञा देते हैं। यह समूह अपने–अपने गुणों के आधार पर सामाजिक संगठन को सुनियोजित रूप से चलाते हैं और इन समूहों के कार्य ही मुख्य रूप से सामाजिक संरचना को चलाते है तथा अपने–अपने कार्यों के अनुसार यह समूह अलग–अलग रूप में जाने जाते हैं।

डॉ0 रवीन्द्रनाथ तथा डॉ0 भरत का विचार है–"सामाजिक कार्यों व कर्त्तव्यों के आधार पर समाज को विभिन्न समूहों में विभाजित करने की व्यवस्था को ही वर्ण–व्यवस्था कहा गया है।"[4]

अतः समाज को अलग–अलग समूहों में बाँटकर उनके कार्यों व कर्त्तव्यों की व्यवस्था को हम वर्ण–व्यवस्था कहते हैं।

डॉ0 संजीव महाजन अपनी पुस्तक 'भारतीय समाज' में लिखते हैं–"वर्ण व्यवस्था भारतीय संस्कृति की उदारता एवं विशालता की प्रतीक है। इसके द्वारा समाज में ऐसा स्तरीकरण किया गया तथा प्रत्येक स्तर के ऐसे कर्तव्य निर्धारित किए गए जिससे कि सामाजिक समन्वय सदैव होता रहे। यह व्यवस्था व्यक्ति और समाज दोनों को समान अधिकार देती है। संसार के अन्य देशों की सामाजिक व्यवस्था में या तो व्यक्ति को अधिक स्वतंत्रता दी गयी है या उसकी स्वतंत्रताओं को खूब जकड़ दिया गया है। यह व्यवस्था सामाजिक सिद्धान्तों के अनुरूप है क्योंकि समाज के विकास के बिना व्यक्ति का विकास सम्भव नहीं है। वर्ण व्यवस्था एक क्रियाशील और संरचनात्मक समाज की व्यवस्था कही जा सकती है जिसमें धर्म को आधार बनाया गया है।"[5] अतः वर्ण–व्यवस्था समाज और व्यक्ति के विकास के साथ जुड़ी हुई है जिसका आधार धर्म है। जिसमें व्यक्ति और समाज को समान अधिकार दिया गया है यह व्यवस्था सिद्धान्तों के अनुसार चलती है।

इस सम्बन्ध में जी0एस0 घुरिये का मत है–"इस भाव से यह प्रतीत होता है कि यह शब्द आर्यों और दासों के लिए क्रमशः गोरे और काले रंग के लिए प्रयोग किया गया है और शायद रंग–भेद की भावना इतनी दृढ़ रही है कि रंग के आधार पर समाज में वर्ण बना दिए गए।"[6]

अतः समाज में वर्ण–व्यवस्था के लिए रंग को आधार बनाया गया। यह शब्द दासों व आर्यों के लिए अधिक प्रयोग होता था। जैसा कि सांख्यदर्शन में कहा गया है कि वर्ण का आधार रंग है उस दृष्टि को आधार मानकर जे0 एच0 हट्टन कहते

हैं–"वर्ण व्यवस्था प्रजाति से सम्बन्धित है तथा वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण के साथ सफेद, क्षत्रिय के साथ लाल, वैश्य के साथ पीला, और शूद्र के साथ काला रंग सम्बन्धित है। इससे यह स्पष्ट होता है कि वर्ण भेद कहीं न कहीं प्रजाति से सम्बन्धित है।"[7]

अतः वर्ण तथा प्रजाति एक दूसरे से सम्बन्धित है जिसमें रंग का अत्यधिक महत्त्व है क्योंकि वर्ण–व्यवस्था को हम रंग द्वारा पृथक करते हैं।

पी0वी0 काणे का मत है–"प्रारम्भ में वर्ण–शब्द का प्रयोग गोरे आर्यों और काले दासों के लिए किया जाता था। किन्तु धीरे–धीरे इसका प्रयोग गुणों एवं कर्मों के आधार पर बने चार वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के लिए किया जाने लगा।"[8] अतः प्रारम्भ में गोरे आर्य व काले दास कहे जाते थे किन्तु कुछ समय पश्चात् कार्य व गुण से सम्बन्धित इस शब्द का प्रयोग वर्णों के लिए किया जाने लगा।

इस सन्दर्भ में डॉ0 हेमराज 'निर्मम' ने लिखा है–"प्राचीन भारतीय समाज का वर्ण विभाजन व्यवसायों के आधार पर हुआ था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्ण माने गए।"[9] अतः वर्ण का विभाजन प्राचीन काल में उनके व्यवसाय के आधार पर किया जाता था जैसे ब्राह्मणों का कार्य था, विद्याध्ययन, पठन–पाठन और विद्या–दान, क्षत्रिय राज्य पर शासन करते, वैश्य का व्यवसाय व्यापार था। वह अलग–अलग क्षेत्रों में व्यवसाय करते थे और शूद्रों का कार्य इन तीनों वर्णों की सेवा करना था।

भगवतशरण उपाध्याय के अनुसार–"वर्णों के उदय का कारण आर्थिक है और वर्ण प्रायः वर्गों की ही सामाजिक संज्ञा है। वर्णों का आरम्भ पेशों अथवा कार्यों के

आधार पर हुआ है।"[10] अतः वर्ण एक सामाजिक संज्ञा हैं जिसमें सामाजिक कार्य व पेशा महत्त्वपूर्ण होता है। सामाजिक तथा मानप्रतिष्ठा के दृष्टिकोण से ब्राह्मण वर्ण को प्रथम स्थान, क्षत्रिय को दूसरा तथा वैश्य को तीसरा स्थान प्राप्त हुआ है। तथा अन्त्यजों को चौथा स्थान दिया गया। धार्मिक दृष्टिकोण से ब्राह्मण को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था।

भगवत शरण उपाध्याय का मत है–"संसार की सारी प्राचीन सभ्यताओं में आर्थिक कारणों से पहले एक कृत्रिम समाज की व्यवस्था हुई है। इसका रूप पहले धर्म की छाया और उसकी आड़ में खड़ा हुआ और उसकी संरक्षा में धार्मिक गुरुओं के दाँव–पेंच में विकसित हुआ। प्राचीन सभ्यताओं में सर्वत्र पहले पुरोहिताई का बोलबाला हुआ। मिश्र में; सुमेर में; असीरिया और बेबीलोन में; अवक़ाद और एलाम में; भारत और चीन में; ब्रिटेन और बर्मा में; सर्वत्र पशुबल के साथ धर्मबल का उदय हुआ।"[11] अतः पुराने समय में पहले पुरोहिताई हुआ करती थी और उसके साथ ही एशिया के अन्य भागों में धर्म–बल का उदय हुआ। भारत में प्रभुत्व प्राप्त करने तथा मान प्रतिष्ठा की दृष्टि से ब्राह्मण तथा क्षत्रियों में अनेक बार लड़ाईयाँ हुईं। भारतीय वर्ण–व्यवस्था में अनेक बार परिवर्तन होने के कारण हिन्दू वर्ण–व्यवस्था का कोई चिह्न मात्र भी नहीं था, वे आक्रमणकारी भारतीय वर्ण व्यवस्था को थोड़ी भी हानि नहीं पहुँचा सके तथा उसे नष्ट करने की रणनीति भी विफ़ल होती गयी तथा वे अपने बिछाए हुए जाल तथा षड्यन्त्र में स्वयं फँस गए। यही कारण है कि भारतीय वर्ण व्यवस्था मुग़लकाल तक कठोरतम एवं सुचारु रूप से चलती रही।

सोलहवीं शती प्रारम्भ होते ही विदेशों से लोगों का आगमन शुरू हुआ जिसका भारतीय समाज पर प्रभाव पड़ना शुरू हुआ किन्तु इसका प्रभाव तत्काल

दिखायी नहीं पड़ता। इसके पश्चात् भारतीय समाज पर अंग्रेज़ों, फ्रांसीसियों तथा डचों का प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हुआ जिसके कारण हमारी सामाजिक व्यवस्था बहुत अधिक प्रभावित हुई। इन परिस्थितियों के फलस्वरूप भारत की राजनीतिक शक्ति मुग़लों के हाथ में थी, मुग़लों को राजनीतिक परिस्थितियों पर वर्चस्व हासिल था। वाई0पी0 छिब्बर के अनुसार –"This functional differentiation, was embodied in the Varnashram Dharma of the vedic period in Indian History. The society at that time was divided into three classes and after wards another class was added. These three classes were known as Brahman (the priest). Kshatra (the warrior), and Vish (the serf). It is in the Purusha-Sukta that the Sudra class has also been mentioned along with the other three customarily the Brahman or Brahmin was associated with priesthood, the duties of studying, teaching and performing sacrifices mentioned in the Vedas. The Kahatriyas were the nobles and rulers; they were the fighters and protectors of the people and it was their duty to see that good government was established and maintained. The Vaishyas (Vish translated as "commonalty" by Keith)"[12]

[भारतीय समाज के वैदिक काल के वर्णाश्रम धर्म में विभिन्न जातियों के बीच अन्तर रखा गया था। उस समय समाज तीन हिस्सों में बँटा हुआ था और कुछ समय पश्चात् एक दूसरी जाति को जोड़ा गया। वह तीन वर्ग ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य थे। इस तीनों वर्ग के अतिरिक्त पुरुष–सूक्त में शूद्र जाति का वर्णन मिलता है। ब्राह्मण को सदैव पूजा–पाठ के कार्य, शिक्षा और रीति–रिवाजों के कार्य के साथ

जोड़ा गया, क्षत्रियों को राज्य करने का अधिकार था वह योद्धा हुआ करते थे और आम जनता की रक्षा किया करते थे यह उनका कर्तव्य था कि जनता के हित की रक्षा करने वाली सरकार केन्द्र पर स्थापित रहे जो सुचारु रूप से कार्य करती रहे। इस प्रकार वैदिक काल में वर्णाश्रम धर्म में जातियों के बीच अन्तर रखा गया जिस समय समाज तीन जातियों में बँटा था तथा सभी जातियों के अपने अलग–अलग कार्य थे।] इस प्रकार वैदिक काल के वर्णाश्रम धर्म जातियों के बीच अन्तर था समाज अलग–अलग वर्गों में बँटा हुआ था तथा वर्णाश्रम धर्म में सभी जातियों के अपने अलग–अलग कार्य निर्धारित थे।

छिब्बर के अनुसार – "Were the common folk. Their duties were cultivation, trade and tending of cattle. They were therefore the producers of wealth. The Sudra was called upon to serve the above three orders". [13]

[वैश्य जाति में अधिकतर वे व्यक्ति थे जिनका कार्य खेती, व्यापार और चरवाहों का था इसलिए यह लोग काफ़ी धनी हुआ करते थे। इन जातियों के अतिरिक्त शूद्रों का कार्य इन तीनों जातियों की सेवा करना था। वैश्य जाति का कार्य खेती व व्यापार था।] अतः वैश्य जाति के लोग खेती व व्यापार में रुचि लेते व शूद्रों का कार्य ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य जाति की सेवा करना था।

वाई0पी0 छिब्बर लिखते हैं–"It is evident then that the Brahmin and the Kshatriya classes were superior to, and protectors of, the other two orders of society. Kautilya has, in keeping with the tradition, spoken of the Vaishya as the taxable group and has denied justice to the Sudra."[14]

[यह प्रमाणित रूप में सत्य है कि ब्राह्मण और क्षत्रिय उच्च जाति का वर्ण था और इसका कार्य समाज को सुचारु रूप से चलाना और उनकी रक्षा करना था। कौटिल्य ने रीति–रिवाजों और परम्पराओं को ध्यान में रखते हुए वैश्य जाति को कर अदा करने वाली श्रेणी में रखा और शूद्रों को कोई भी न्याय नहीं दिया। उनका कार्य इन तीनों जातियों की सेवा करना था इन्हें समाज में सबसे निम्न स्थान प्राप्त था।] अतः समाज में सभी जातियों का कार्य अलग–अलग था जिससे उनकी श्रेणी का निर्धारण होता था।

वाई0पी0 छिब्बर के अनुसार–"Social differences in the status of an individual or a group has obtained in every country at all times in human history. The one criterion which can safely be applied to determine one's importance attached to his occupation. Some communities permit a comparative freedom to choose one's occupation or limb up the vertical hierarchy of activities in some communities the activity to be pursued by the individual is determined by birth."[15]

[यदि समाज के इतिहास को देखा जाये तो हर देश में विभिन्न जातियों के बीच सामाजिक अन्तर रहा है। व्यक्ति की जाति के आधार पर ध्यानपूर्वक विभिन्न कार्यों को बाँटा गया। व्यक्ति की श्रेणी की महत्ता उसके व्यवसाय से होती थी। कुछ जगहों पर व्यक्ति के पास अधिकार होता था कि वह अपनी इच्छा से अपना व्यवसाय चुन सकें और समाज के उच्चवर्ग में अपना स्थान बना सके जबकि कुछ जगहों पर व्यक्ति का व्यवसाय उसके जन्म के साथ निर्धारित हो जाता था।] इस प्रकार यदि हम भारतीय समाज के इतिहास को दृष्टि में रखकर बात करें तो

समाज की विभिन्न जातियों के मध्य अन्तर रहा है और इसी अन्तर के आधार पर उनके कार्य व श्रेणी को विभाजित किया गया।

वर्ण–व्यवस्था के कुछ मुख्य प्रकार्य या महत्त्व होते हैं। इसके प्रकार्यों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। 1. सामान्य कार्य तथा 2. विशेष कार्य।

सामान्य कार्य

1. क्षमा, आत्मसंयम, ईमानदारी एवं दान आदि सद्‌गुणों का पालन करना।
2. इन्द्रियों पर नियंत्रण करना।
3. चरित्र तथा जीवन की शुद्धि को बनाए रखना।
4. किसी भी मनुष्य को नुकसान नहीं पहुँचाना।
5. अधिकार पूर्वक किसी भी वस्तु को लेने से बचना।
6. सत्‌त सत्य की खोज में रहना।

विशेष कार्य

1. ब्राह्मण के विशेष कार्य या कर्तव्यों में अध्यापन, यज्ञ करना, अध्ययन, दान देना तथा उपहार लेना आदि को सम्मिलित किया जाता है।
2. क्षत्रियों के विशेष कार्य या कर्तव्यों में धर्म तथा जीवन की रक्षा करना, दान देना, पढ़ना तथा यज्ञ करना आदि को सम्मिलित किया गया है।
3. वैश्यों के विशेष कार्य या कर्तव्यों में पढ़ना, दान देना, यज्ञ करना, कृषि, पशुपालन एवं लेन–देन तथा व्यापार को शामिल किया गया है।
4. शूद्रों के विशेष कार्य या कर्तव्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य जाति की सेवा करने को सम्मिलित किया गया है।

इस प्रकार उपर्युक्त कर्तव्यों, कार्यों एवं धर्मो का पालन करना प्रत्येक जाति के लिए ज़रूरी माना जाता था। भारतीय ऋषि–मुनियों ने व्यक्ति के गुणों, कर्मों एवं क्षमता के आधार पर वर्ण का निर्धारण किया था। वर्ण–व्यवस्था में इस बात की आज़ादी थी कि कोई भी व्यक्ति अपने गुणों के आधार पर अपने से उच्च वर्ण में आ सकता था। अपने अवगुणों के कारण उसे निम्न वर्ण प्राप्त होता था साथ ही वर्ण व्यवस्था अत्यन्त प्राचीन एवं सामाजिक प्रणाली रही है।

सामाजिक वर्ग

सामन्तवादी युग के उपरान्त पूँजीवादी युग का आरम्भ हुआ। पूँजीवाद के चरम विकास ने समाज में वर्गों का निर्धारण किया। वास्तव में वर्ग समाज में अनेक परिस्थितियों के चारों ओर स्थित व्यक्तियों का एकत्री भाव होता है जिसे हम सामाजिक वर्ग की संज्ञा देंगे।

सामाजिक वर्ग के विषय में राम आहूजा, मुकेश आहूजा लिखते हैं कि– "सामाजिक वर्ग ऐसे लोगों की श्रेणी होती है जिनकी अपनी सम्प्रदाय या समाज के अन्य खण्डों के साथ सम्बधों के अर्थ में समान सामाजिक, आर्थिक परिस्थिति होती है। एक सामाजिक वर्ग संगठित नहीं होता। व्यक्ति और परिवार एक सामाजिक वर्ग बनाते है जो शैक्षिक, आर्थिक, प्रतिष्ठा और परिस्थिति में सापेक्ष रूप से समान होते हैं।"[16] अतः सामाजिक वर्ग एक संगठित श्रेणी होती है। जो आर्थिक, शैक्षिक, सामाजिक तथा प्रतिष्ठा की दृष्टि से समान होती है। जिसमें व्यक्ति और परिवार महत्त्वपूर्ण होते हैं।

मार्क्सवादी चिन्तन के अनुसार–"सामाजिक वर्गों की रचना उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व के अनुसार होती है इसी आधार पर वे पूँजीवादी समाज को दो वर्गों में बाँट पाते हैं। उत्पादन के साधनों पर स्वामित्त्व रखने वाला बुर्जुआ तथा स्वामित्व से वंचित वर्ग को सर्वहारा कहा जाता है। बुर्जुआ वर्ग शासक होता है और शोषक भी। सर्वहारा वर्ग श्रम करता है, शोषित और निर्धन भी।"[17] अतः स्पष्ट है कि सामाजिक वर्ग की रचना का आधार उत्पादन के साधनों और उसके स्वामित्त्व को कहेंगे। जिसमें एक वर्ग शासन करता है और दूसरा श्रम करता है। इन वर्गों को बुर्जुआ (शासक) तथा सर्वहारा (शोषित) प्रोलिटेरिएट वर्ग कहा गया है।

"आधुनिक भारतीय समाज में जाति के अलावा वर्ग को भी अधिक महत्त्व दिया जाने लगा है। धन और सम्पत्ति के आधार पर तीन वर्ग उच्चवर्ग, मध्यवर्ग, और निम्नवर्ग प्रमुख हैं।"[18] अतः भारतीय समाज में वर्ग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं जहाँ तीन ही वर्गों को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है वे हैं उच्चवर्ग, मध्यवर्ग तथा निम्नवर्ग। अधिक स्पष्ट रूप से वर्ग को समझने के लिए हम इसकी कुछ व्याख्याएँ और देखेंगे–

एस0एल0 दोषी व सी0पी0 जैन के मतानुसार–"किसी भी एक औद्योगिक समाज में वर्ग व्यवस्था पायी जाती है फिर वर्ग कई प्रकार के हैं। एक ओर मज़दूरी करने वाले लोग हैं, दूसरी ओर सफेदपोश लोग हैं और सबसे ऊपर उच्च या अभिजन लोग हैं।"[19] अतः औद्योगिक समाज में अनेक प्रकार के वर्ग तथा वर्गों की व्यवस्था पायी जाती है जिसमें एक ओर श्रम करने वाले है तो वहीं दूसरी ओर सबसे ऊपर उच्चवर्ग के लोग हैं।

एस0एल0 दोषी व सी0पी0 जैन इस विषय पर लिखते हैं –"समाज शास्त्र में वर्ग व्यवस्था को अर्जित परिस्थिति के साथ जोड़ा जाता है। वर्ग आज की पूँजीवादी औद्योगिक व्यवस्था के प्रमुख समूह हैं।"[20] अतः हम वर्ग को सामूहिक रूप से पूँजीवादी औद्योगिक व्यवस्था के साथ जोड़ सकते हैं।

मैक्सवेबर का कथन है–"वर्ग का निर्धारण शक्ति (Power) के आधार पर किया जाता है।"[21] अतः वर्ग निर्धारण में शक्ति की महत्ता को भी माना जा सकता है।

एंथोनी गिडेन्स ने वर्ग की व्याख्या इस प्रकार की है–"वर्ग एक वृहत् स्तर पर लोगों का समूह है जिनकी आर्थिक संसाधनों में समान भागीदारी होती है। वे लोग दृढ़ता से विशेष जीवन पद्धति को प्रभावित करते हैं। वर्ग विभेदीकरण के दो आधार है– 1. धन का स्वामित्व और 2. इससे जुड़ा हुआ व्यवसाय।"[22] इस प्रकार जिनकी आर्थिक संसाधनों में एक जैसी भागीदारी होती है तथा जिनकी जीवन शैली एक विशेष प्रकार की होती है ऐसे वृहत् समूह को वर्ग कहते हैं।

मार्क्स का कथन है–"जब लाखों परिवार ऐसी आर्थिक दशा में जीवनयापन करते हैं तो उन्हें उनकी जीवन पद्धति, उनके हेतुओं और उनकी संस्कृति अन्य वर्गों से विमुख कर देती है और उन्हें शत्रुतापूर्ण विरोधी खेमे में ला देती है, वर्ग कहलाती है।"[23] इस प्रकार वर्ग को उसकी आर्थिक दशा, विशेष जीवन–यापन, उनकी संस्कृति तथा जीवन पद्धति आदि की दृष्टि से देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त वर्ग व्यक्ति की उपलब्धियों व सफ़लताओं पर भी निर्भर करता है तथा यह एक आर्थिक संरचना होती है।

भारत में वर्ग संरचना की व्याख्या करते हुए दीपांकर गुप्ता का विचार है कि–"हमारे यहाँ वर्ग का बहुत बड़ा आधार उपभोग (Consumption) है। ऐसा

समझा जाता है कि जितना ऊँचा वर्ग होगा, उतना ही ऊँचा उसका उपभोग का स्तर होगा। उदाहरण के लिए भारत में लगभग आधे करोड़ लोगों के पास टेलीवीज़न हैं, लगभग दो करोड़ लोगों के पास हाथ घड़ी है। इस देश में लगभग 3 करोड़ लोगों के पास अपनी खुद की मोटरगाड़ी है। ये सब वस्तुऐं उपभोग की है और इनके आधार पर उच्च, मध्यम और निम्नवर्ग का निर्धारण होता है। वर्गों के निर्धारण में यह भी देखा जाता है कि एक व्यक्ति की प्रतिवर्ष औसत आय कितनी है।"[24] अतः हम वर्ग संरचना का आधार उपभोग को भी कहेंगे क्योंकि वर्ग जितना बड़ा होगा उपभोग का स्तर भी उतना ही बड़ा होगा। वर्ग संरचना को उपभोग तथा व्यक्ति की प्रतिवर्ष औसत आय के दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है।

योगेन्द्र सिंह का विचार है–"परम्परागत भारतीय समाज में वर्ग का सम्बन्ध उत्पादन पद्धतियों, सम्पत्ति के स्वामित्त्व, शहरों के विस्तार, बाज़ार, बैंकिंग व्यवस्था के फैलाव, और राजनीतिक शक्ति के केन्द्र से जुड़ा हुआ है। इस युग में राजा, सामन्त, पुरोहित, व्यापारी, कारीगर, किसान और मज़दूर भी वर्ग बनाते थे। इस वर्ग व्यवस्था में केवल कुलीन वर्ग ही नहीं थे बल्कि व्यापारी भी थे।"[25] अतः वर्ग का सम्बन्ध उत्पादन, सम्पत्ति, बाज़ार, बैंकिंग और राजनीति से भी जुड़ा होता है। जिसमें निम्नवर्ग के लोग ही नहीं व्यापारी भी शामिल थे।

प्रसिद्ध भारतीय अर्थशास्त्री वी0एम0 दाण्डेकर ने भारतीय समाज में वर्ग और वर्ग संघर्ष की जाँच करते हुए भारतीय वर्गों को पाँच प्रकारों में बाँटा है–

1. "पूर्व पूँजीवादी वर्ग संरचना (कृषक, कृषि श्रमिक और घरेलू उद्योग)
2. पूँजीवादी समाप्त स्वतंत्र उद्यमी;
3. नियोजक

4. सफेद पोश कर्मचारी और

5. ब्ल्यू कॉलर कर्मी

इन सभी वर्ग श्रेणियों का विभाजन निम्न प्रकार से किया जा सकता है –

1. कृषक वर्ग, 2. उद्योगरत वर्ग 3. व्यावसायिक वर्ग और व्यापारी वर्ग।"[26] अतः हम वर्गों को व्यापारी, कृषक, उद्योग कर्मी, ब्ल्यू कॉलर कर्मी तथा व्यवसाय में लगे हुए लोगों में भी विभाजित कर सकते हैं।

डॉ0 संजीव महाजन वर्ग के सम्बन्ध में लिखते हैं–"वर्ग व्यवस्था भी सामाजिक स्तरीकरण का एक प्रकार है–चूंकि वर्ग अर्जित पदों को महत्त्व देता है तथा इसमें मनुष्य अपनी योग्यता के आधार पर उच्च पद को ग्रहण कर सकता है और उच्चवर्ग का सदस्य हो सकता है अतः यह व्यवस्था जाति के विपरित खुली एवं लोचपूर्ण व्यवस्था है तथा इसमें परम्परागत कठोरता नहीं पायी जाती है।"[27] अतः वर्ग को खुली व लोचपूर्ण व्यवस्था कहा जा सकता है जिसमें कठोरता नहीं पायी जाती है। इसमें मनुष्य की योग्यता महत्त्वपूर्ण होती है तथा यह सामाजिक संरचना का एक प्रकार है।

कार्ल मार्क्स व मैक्सवेबर आदि विचारकों का मत है कि–"वर्ग मुख्यतः आर्थिक अन्तर पर आधारित होता है कार्ल मार्क्स की मान्यता है कि प्राचीन युग से ही समाज आर्थिक आधार पर ही वर्गों में बँटा हुआ है। पहले जब कृषि युग था तब दो प्रमुख वर्ग थे–ज़मींदार तथा कृषक, सामन्त तथा दास औद्योगीकरण के बाद पूँजीपति तथा श्रमिक। चाहे पूँजीपति वर्ग को ले अथवा ज़मींदार या सामन्त को इनके पास भौतिक सम्पन्नताएं अधिक थी वे मालिक रहे हैं और कृषक, दास एवं श्रमिक वर्ग के लोग प्राचीन युग से ही अच्छी प्रकार की सुविधाओं से वंचित रहे

हैं।" [28] अतः वर्गों का विभाजन आर्थिक आधार पर किया जा सकता है। आर्थिक अन्तरों में परिवर्तन वर्ग विभाजन का मुख्य कारण होता है क्योंकि समाज का प्रत्येक व्यक्ति आर्थिक परिस्थितियों व समस्याओं के चारों ओर घूमता रहता है।

डॉ0 संजीव महाजन का विचार है–"सामाजिक वर्ग सामाजिक स्तरीकरण का ही एक स्वरूप है यह मुख्यतः आर्थिक समानताओं एवं समान जीवन के अवसरों पर आधारित समूह है। अथवा सामाजिक वर्ग व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जिसके सदस्यों की आर्थिक स्थिति एवं अन्य विशेषताएँ समान होती हैं तथा जिनके सदस्यों में अपने समूह के प्रति चेतना पायी जाती है।"[29] इस प्रकार वर्ग आर्थिक समानताओं व समान जीवन पर आधारित होता है जिसकी अपनी विशेषताएँ होती हैं तथा इनमें अपने समूह के प्रति सदैव जागरुकता पायी जाती है।

समाज व्यवस्थित एवं सुचारु रूप से अपनी ज़िम्मेदारियों को निभा सके इसके लिए यह ज़रूरी है कि एक अनुशासनपूर्ण व्यवस्था का निर्माण किया जाये। इसी कारण अनेक भारतीय विद्वानों के अतिरिक्त पाश्चात्य विद्वानों ने भी सामाजिक वर्ग की आवश्यकता महसूस की और अपने–अपने विचार व मान्यताएँ स्थापित की।

डॉ0 हेमराज 'निर्मम' इस विषय पर लिखते हैं–"मार्क्स के विचार में सामन्तवादी युग के समाप्त होने पर पूँजीवादी युग का आरम्भ हुआ। पूँजीवादी युग ने कृषि करने वाले लोगों को साधारण काश्तकार बना दिया ऐसे लोगों की संख्या लगातार बढ़ती गयी इसलिए पूँजीवाद के समाप्त होने पर समाज में केवल दो वर्ग ही रह जाऐंगे। बुर्जआ और प्रोलिटेरियट (श्रमिक)। अभी बुर्जुआ और श्रमिक के बीच में एक ऐसा वर्ग है जिसे पेटी (छोटा) बुर्जुआ कहा गया है। पर मार्क्स और एंजिल

भविष्य में इस वर्ग का कोई अस्तित्त्व नहीं मानते अतः इनकी दृष्टि में समाज केवल दो वर्गों में विभाजित है – 1. बुर्जुआ 2. श्रमिक"[30]

अतः सामन्तवादी युग की समाप्ति के पश्चात् पूँजीवादी युग के आरम्भ होने पर समाज में केवल दो ही वर्ग थे श्रमिक तथा बुर्जुआ इन वर्गों के मध्य तीसरा कोई वर्ग नहीं था अपितु इन दोनों वर्गों के मध्य एक नया वर्ग बना है जिसे 'पेटी बुर्जुआ' कहा गया है।

उपर्युक्त विद्वानों के तथ्यों के पश्चात् यदि हम अधिसंख्य पूँजीवादी देशों में सामाजिक वर्गों के स्तरीकरण की बात करें तो इन देशों में सामाजिक वर्गों का स्तरीकरण इस प्रकार है :– 1. उच्चवर्ग 2. मध्यवर्ग 3. निम्नवर्ग।

पूँजीवादी देशों में इन तीनों वर्गों को दृष्टि में रखकर सामाजिक व्यवसायों तथा कार्यों की व्याख्या की गयी। तीनों वर्ग अपने–अपने स्वरूप को सामाजिक व्यवस्था के अनुसार व्याख्यायित करते है। उच्चवर्ग वह है जिनके पास पूँजी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है तथा जिनका उत्पादन के साधनों पर अधिकार होता है। मध्यवर्ग वह वर्ग है जो श्रमिक की भाँति श्रम भी नहीं करना चाहता तथा उसका उत्पादन के साधनों पर अधिकार भी नहीं होता है इसकी स्थिति मध्य में होती है। निम्नवर्ग वह है जो श्रम करता है, उनके पास न तो पूँजी होती है न ही उत्पादन के साधन इनकी स्थिति निम्न होती है। वह केवल श्रम पर आधारित होता है। पूँजीवादी देशों में इनकी अपनी स्थिति स्पष्ट होती है।

डॉ0 बी0बी0 मिश्र का मत है–"The concept of a single social class implies social devision which proceeds from the mequalities and differences of men in society, which may be natural or economic. It is

chiefly the economic mequality of man that influences, if it does not wholly determine, social differentiation. It arises basically from the difference of relationship which a person or a group beass to property or the means of production and distribution. If an individual is an owner of lend, superior social significance. But if, on the contrary he is a mere tiller of the soil that does not belong to him, he finds himself socially scaled down." [31]

[मनुष्य की आर्थिक असमानता मुख्य रूप से सामाजिक विभेद को प्रभावित करती है यद्यपि यह पूर्ण रूप से उसका निर्धारण नहीं करती। यह आर्थिक असमानता मूलतः उस सम्बन्ध के अन्तर से उत्पन्न होती है जो कि व्यक्ति या व्यक्ति समुदाय का सम्पत्ति अथवा उत्पादन और वितरण के साधनों के साथ होता है। यदि एक व्यक्ति ज़मीन का मालिक है तो वह अपेक्षाकृत अधिक सामाजिक महत्त्व प्राप्त करने लगता है परन्तु इसके विपरित वह केवल पराई ज़मीन पर खेती करने वाला है तो वह स्वयं को सामाजिक दृष्टि से अधोगत पाता है। और यह स्थिति मनुष्य की असमानता को दर्शाती है।] अतः आर्थिक असमानता सामाजिक असमानता का मुख्य आधार हैं और वह समाज में वर्गों के कार्यों व व्यवसाय पर निर्भर करती है।

प्रसिद्ध विद्वान जी0डी0एच0 कोल का विचार है–"वर्ग वास्तव में अनेक केन्द्रीय बिन्दुओं के चारों ओर स्थित व्यक्तियों का इस रूप में एकत्री भाव है कि प्रत्येक केन्द्र के निकटवर्ती व्यक्तियों के विषय में विश्वासपूर्वक यह कहा जा सके कि वे वर्ग विशेष के सदस्य है। परन्तु जो केन्द्र से दूरी पर अवस्थित है उन्हें उस

वर्ग में रखा जा सकता है। जिसका वह अत्यधिक बढ़ते हुए अनिश्चय के साथ प्रतिनिधित्त्व करता है। इसके अतिरिक्त एक व्यक्ति एक ही समय में एक से अधिक वर्गों के क्षेत्र में भी अन्तर्भूत हो सकता है फलतः उसे पूर्णरूपेण किसी एक वर्ग में नहीं रखा जा सकता है और ऐसे भी लोग हैं जिन्हें शायद ही किसी वर्ग में स्थान दिया जा सके।"[32] अतः वर्ग व्यक्तियों का एकत्र रूप है जिसमें वर्ग विशेष के सदस्य होते हैं। इसके विपरीत एक व्यक्ति जो एक से अधिक वर्ग का प्रतिनिधित्त्व करता है उसे किसी एक विशेष वर्ग में नहीं रख सकते। इसे सामाजिक असमानता भी कहते हैं।

हैनरी ए0 मेस के अनुसार–"एक सामाजिक वर्ग मनुष्यों का ऐसा समुदाय है जो अपने कतिपय ऐसे सामान्य गुणों और व्यवहार एवं कतिपय सामान्य तरीकों के विषय में सचेत रहता है जो उन व्यक्तियों को दूसरे विभिन्न गुणों तथा व्यवहार वाले सामाजिक वर्गों के सदस्यों से पृथक करते हैं। किसी सामाजिक वर्ग विशेष का सदस्य बनने के हेतु एक व्यक्ति के लिए यह अनिवार्य है कि वह स्वयं को उस रूप में अनुभव करे एवं दूसरों द्वारा भी वह इस रूप में अनुभव किया जाये।"[33] अतः जो अन्तर या असमानताएँ समाज में व्याप्त है वह स्वयं ही समाज को विशेष प्रकार के वर्गों में विभक्त कर देते हैं। इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को नकारा नहीं जा सकता है।

सामाजिक स्तरीकरण

सामाजिक स्तरीकरण समाज की वह व्यापक कसौटी है जो शिक्षा, आय, व्यवसाय, परम्परा, रहने–सहने के ढंग, संस्कृति के आधार पर सम्मिलित रूप से यह

निर्णय लेती है कि व्यक्ति विशेष या समूह को समाज के किस वर्ग के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

डॉ0 संजीव महाजन के अनुसार–"समाज में भौतिक संस्कृति की वृद्धि तथा औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप समाज के स्तरीकरण रक्त की शुद्धता एवं जन्म के आधार पर न होकर सामाजिक स्थिति, राजनीतिक स्थिति एवं आर्थिक स्थिति के आधार पर या तीनों के सम्मिलित रूप से होता है।"[34]

इस प्रकार सामाजिक स्तरीकरण को हम राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक स्थिति के साथ सम्मिलित करेंगे। साथ ही यह एक दूसरे से परस्पर सम्बन्धित होते हैं।

अपनी पुस्तक 'समाजशास्त्र विवेचना एवं परिप्रेक्ष्य' में सामाजिक स्तरीकरण के विषय में राम आहूजा, मुकेश आहूजा लिखते हैं–"सामाजिक स्तरीकरण समाज का अधिश्रेणिक विभाजन है जो लोगों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। सामाजिक स्तरीकरण का आशय उस तन्त्र से है जिसके द्वारा समाज लोगों को एक पदानुक्रम में वर्गीकृत करता है।"[35] अतः सामाजिक स्तरीकरण समाज का एक ऐसा विभाजन है जो लोगों को एक क्रम में व्यवस्थित करता है और जिसका आधार सांस्कृतिक पृष्ठभूमि भी होती है।

इसी क्रम में–"सामाजिक स्तरीकरण– 1. उतार–चढ़ाव का एक प्रकार है 2. यह व्यक्ति की श्रेणी (Rank) और स्थिति (Status) का सूचक है 3. यह समाज समूहों में विभाजन पर आधारित है। जिसके अनुसार –

1. एक व्यक्ति या कुछ व्यक्ति नहीं परन्तु पूरा समाज मूल्यों को स्वीकार करता है जैसे अमीर की उच्च स्थिति या ग़रीब की निम्न स्थिति।

2. यह प्रक्रिया प्रस्थिति के आधार पर बहुत पुरानी है।
3. यह प्रक्रिया प्रत्येक समाज में और हर काल में पायी जाती है।
4. स्तरीकरण के स्वरूप में भिन्नताऐं मिलती हैं जैसे भारत में जाति के आधार पर (जन्म से) और पश्चिमी समाज में वर्ग आधार पर।
5. इसके परिणाम सामाजिक होते हैं जैसे जीवन स्तर, बहुमूल्य वस्तुऐं (बड़ी कार, प्लाज्मा टी0वी0)।"[36] अतः सामाजिक स्तरीकरण व्यक्ति की श्रेणी और स्थिति से सम्बद्ध होता है तथा इस स्तरीकरण का परिणाम सामाजिक रूप में दृष्टिगत होता है।

पाश्चात्य विद्वान मैकियन्स और प्लमर (1997) सामाजिक स्तरीकरण की निम्न विशेषताएँ बताते हैं –

1. यह व्यक्तिगत भिन्नताओं के कारण उत्पन्न नहीं होती बल्कि यह समाज की विशेषता होती है। उदाहरण के लिए स्वास्थ्य व सम्पन्नता में सम्पन्न परिवारों में जन्में बच्चें ग़रीब परिवारों में जन्मे बच्चें की अपेक्षा अधिक स्वस्थ्य होते हैं और अधिक शैक्षिक योग्यता प्राप्त करते हैं। अपने जीवन में अधिक सफ़ल होते है तथा दीर्घायु होते हैं। फिर भी यह ग़रीब व सम्पन्न दोनों प्रकार के लोगों के जीवन को आकृति प्रदान करती है।
2. सामाजिक स्तरीकरण कई पीढ़ियों तक विद्यमान रहता है। इसी प्रकार असमानता भी पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती है। यह इसलिए होता है क्योंकि पालक अपनी सामाजिक स्थिति अपने बच्चों को प्रदान करते हैं फिर भी औद्योगीकृत समाजों में कुछ व्यक्ति समाज में अपने स्तर को बदलने में सफ़ल होते हैं। सामाजिक स्तर में बदलाव ऊर्ध्वगामी तथा अधोगामी दोनों

प्रकार का हो सकता है। हमारे समाज द्वारा ऐसे व्यक्तियों की प्रशंसा भी की जाती है जो साधारण परिवारों से हैं परन्तु जिन्होंने सम्पन्नता प्राप्त की। किन्तु हम यह भी स्वीकार करते हैं कि लोग व्यापार में छोटे, बेरोज़गारी अथवा बीमारी के कारण सामाजिक स्तर में नीचे भी आते हैं। अधिकाशतः जब व्यक्ति अपना व्यवसाय परिवर्तित करते हैं तो वे समस्तरीय दिशा में ही बढ़ते हैं। किन्तु कुछ लोगों के लिए उनकी सामाजिक स्थिति जीवन पर्यन्त समान ही रहती है।

3. सामाजिक स्तरीकरण सर्वव्यापक (Universal) होता है किन्तु इसमें भिन्नता होती है सामाजिक स्तरीकरण सभी समाजों में व्याप्त है किन्तु यह प्रत्येक समाज में भिन्न है। तकनीकी दृष्टि से विकसित समाजों में सामाजिक असमानताएँ कम–से–कम होती हैं और यदि होती भी है तो वे आयु व लिंग के आधार पर होती हैं।
4. सामाजिक स्तरीकरण में असमानता ही नहीं बल्कि आस्थाएं भी निहित होती हैं। असमानता का तन्त्र न केवल कुछ लोगों को दूसरों की अपेक्षा अधिक संसाधन प्रदान करता है बल्कि इस प्रकार की व्यवस्थाओं को उचित व न्यायपूर्ण मानता है। कुछ लोगों द्वारा जो असमानता के कारण खोजने में लगे हैं इसे समझाया गया है। भारत में इस असमानता को पिछले जन्म के कर्मों का फल बताकर समझाया जाता है।"[37]

अतः सामाजिक स्तरीकरण एक सामाजिक विशेषता होती है। इसमें व्यक्तिगत भिन्नता नहीं पायी जाती है। सामाजिक स्तरीकरण पीढ़ी दर पीढ़ी चलता है। सामाजिक स्तरीकरण में बदलाव भी होते रहते हैं, इसमें भिन्नताएँ होती हैं तथा

यह समाज में व्यापक रूप से फैला हुआ है साथ ही विकसित समाज में सामाजिक स्तरीकरण में असमानताएँ बहुत कम होती है। इसके अतिरिक्त यह असमानताओं पर ही नहीं अपितु आस्थाओं पर भी निर्भर करता है और उस पर विश्वास भी करता है।

सामाजिक स्तरीकरण के आधार को दृष्टि में रखते हुए वेबर कहते हैं कि – "स्तरीकरण के तीन आधार हैं वर्ग, प्रस्थिति तथा सत्ता। किन्तु हाल ही में समाजशास्त्रियों ने माना है कि समाज लिंग, आयु व प्रजातिकता के आधार पर भी स्तरीकृत हो सकता है। अतः आज हम चार प्रकार के स्तरीकरण की चर्चा करते हैं–1. सामाजिक व आर्थिक स्तरीकरण 2. लिंग आधारित स्तरीकरण 3. आयु आधारित स्तरीकरण व 4. शैक्षिक स्तरीकरण।"[38] अतः जैसे वर्ग, सत्ता, शिक्षा, आयु, लिंग व प्रजातिकता सामाजिक स्तरीकरण का आधार हैं उसी प्रकार सामाजिक स्तरीकरण की चर्चा सामाजिक, शैक्षिक व आर्थिक आधारों पर भी की जा सकती है। सामाजिक स्तरीकरण में व्यक्ति का व्यवहार व सिद्धान्त सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होता है।

सामाजिक वर्गीकरण को ध्यान में रखते हुए विद्वानों ने उसकी व्याख्या व्यक्तिनिष्ठ एवं वस्तुनिष्ठ आधार पर की है।

व्यक्तिनिष्ठ आधार

किसी व्यक्ति से पूछने पर वह व्यक्ति स्वयं को जिस वर्ग विशेष का घोषित करे कि वह वर्ग उसी का है या वह उस विशेष वर्ग से सम्बन्ध रखता है यह

सामाजिक दृष्टिकोण का व्यक्तिनिष्ठ आधार हुआ। यह आधार व्यक्ति के स्वयं के आकलन पर निर्भर करता है।

वस्तुनिष्ठ आधार

प्रसिद्ध विद्वान जी0डी0एच0 कोल वस्तुनिष्ठ स्तरीकरण के लिए निम्नलिखित तत्त्वों को आधार मानते हैं।

1. आय
2. व्यवसाय
3. शिक्षा" [39]

इस प्रकार हम सामाजिक दृष्टिकोण से व्यक्ति के सामाजिक स्तरीकरण के लिए आय, व्यवसाय और शिक्षा को प्रमुख आधार कहेंगे।

रॉय लेविस तथा मॉडे द्वारा सामाजिक वस्तुनिष्ठ स्तरीकरण की सूची इस प्रकार प्रस्तुत की गयी है। शिक्षा, आय तथा व्यवसाय के अतिरिक्त कुछ महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को भी यह सामाजिक वस्तुनिष्ठ स्तरीकरण का आधार मानते है जो निम्न प्रकार है–

1. "आय
2. व्यवसाय
3. स्वराघात (लहजा)
4. व्यय की आदतें
5. निवास
6. संस्कृति

7. अवकाश के कार्य

8. कपड़े

9. शिक्षा

10. नैतिक अभिवृत्ति

11. अन्य व्यक्तियों से सम्बन्ध

12. परिवार पर एक दृष्टि"[40]

अतः समाज का वस्तुनिष्ठ स्तरीकरण व्यय, शिक्षा, रहन–सहन का तरीका, व्यक्तियों से परस्पर सम्बन्ध, परिवारिक एकता, निवास, संस्कृति, नैतिक आदर्श पर भी आधारित होता है।

डब्ल्यू0जे0एच0 स्प्रॉट सामाजिक वस्तुनिष्ठ स्तरीकरण का आधार प्रमुख पाँच तत्त्वों को मानते हैं– 1.जाति 2. सम्पदा या कुल 3. व्यवसाय 4. प्रशासकीय पदानुक्रम 5. आय स्तर।"[41] अतः उपर्युक्त पाँच प्रमुख तत्त्व सामाजिक वस्तुनिष्ठ स्तरीकरण को आधार प्रदान करने में अपनी प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

उपर्युक्त सभी विद्वानों द्वारा दी गयी सामाजिक वस्तुनिष्ठ स्तरीकरण की सूची को ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता हैं कि वस्तुनिष्ठ स्तरीकरण के केन्द्र में इन सभी तत्त्वों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है इसके अलावा व्यक्ति विशेष या समुदाय की मानसिकता को भी वस्तुनिष्ठ स्तरीकरण का आवश्यक तत्त्व माना जाना चाहिये क्योंकि सामाजिक स्तरीकरण व्यक्ति विशेष या व्यक्ति समुदाय की मानसिकता पर भी निर्भर करता है कि उस व्यक्ति विशेष या समुदाय का दृष्टिकोण समाज तथा सामाजिक व्यवहार के प्रति कैसा है।

उपर्युक्त सभी विद्वानों ने आय को सामाजिक स्तरीकरण की प्रमुख कसौटी माना है। यदि इन विद्वानों के विचार और अध्ययन में कहीं अन्तर है तो सिर्फ इतना है कि लेविस, मॉडे व कोल आय को सामाजिक स्तरीकरण की प्रथम कसौटी मानते हैं जबकि स्प्रॉट आदि महत्त्वपूर्ण विद्वान इसे प्रथम स्थान न देकर गौण स्थान देते हैं इसी कारण हम सभी कसौटियों में सर्वप्रथम आय की चर्चा करेंगे।

आय को सामाजिक स्तरीकरण की कसौटी मानने के लिए सबसे पहले आवश्यक डेटा या आँकड़े प्राप्त करते हैं। इसके पश्चात् किसी भी स्रोत से प्राप्त की हुई आय को वर्गों के अनुसार रखते हैं फिर उस आय को वर्गों के अनुसार बाँटकर हम यह कह सकते हैं कि यह व्यक्ति, इस विशेष वर्ग का है। यहाँ हमारे सामने एक प्रश्न यह आता है कि आय सिर्फ परिवार के एक व्यक्ति की गिनी जाय या परिवार के किसी अन्य सदस्य की भी यदि हम व्यक्तिगत आय को स्तरीकरण की कसौटी माने तो जिस परिवार में पति–पत्नी दोनों नौकरी पेशा हैं और परिवार की आजीविका चलाते हैं तो उन्हें हम किस प्रकार के वर्ग में रखेंगे जबकि दोनों की आय में एक बड़ा अन्तर दिखायी देता हो। भारत देश में आज भी संयुक्त परिवार प्रथा थोड़ी बहुत देखने को मिल जाती है उस परिवार में एक ही व्यक्ति की आय को स्तरीकरण की कसौटी नहीं माना जा सकता है। यदि हम इन बातों पर ध्यान दें तो और आय को ही सामाजिक स्तरीकरण की कसौटी माने तो यह अधिक उपयुक्त होगा कि स्तरीकरण के लिए पूरे परिवार की आय को सामाजिक स्तरीकरण की कसौटी माना जाय। आय मुख्य रूप से आर्थिक स्तर को स्पष्ट रूप से व्यक्त करती है और एक व्यक्ति का आर्थिक स्तर उसका सामाजिक स्तर निर्धारित करता है। एक खाते–पीते सम्पन्न व्यक्ति को हम सामाजिक स्तरीकरण

की दृष्टि से मध्यवर्ग में तभी रखेंगे जब अन्य तत्त्व भी पूर्ण रूप से उसकी आय के साधन और उसे उपयोग करने के तरीके में सामन्जस्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करेंगे। सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया ऐसी होती है जिसकी गति काल–क्रम के अनुसार धीमी होती है। और समाज की अर्थव्यवस्था को पूर्ण रूप से प्रभावित करती है। अतः आय को विभिन्न वर्गों में विभाजित करने के लिए एक काल विशेष को ध्यान में रखते हुए सामाजिक स्तरीकरण के मानदण्ड के रूप में तय करना होगा। आय की सीमाओं को अधिकतम तथा न्यूनतम आँकड़ों के रूप में विभाजित करके उसे सामाजिक स्तरीकरण के मानक के रूप में तय करना अत्यन्त कठिन काम होगा इस प्रकार किसी वर्ग विशेष का स्तरीकरण करने के लिए केवल आय ही महत्त्वपूर्ण नहीं कही जा सकती है।

व्यवसाय सामाजिक स्तरीकरण की एक महत्त्वपूर्ण कसौटी है। प्रायः सभी विद्वानों ने इस कसौटी को सामाजिक स्तरीकरण की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना है। व्यवसाय को हम ध्यान में रखते हुए समाज को तीन वर्गों में बाँट सकते हैं। 1. उच्चवर्ग (बुर्जुआ) 2. मध्यमवर्ग (छोटे बुर्जुआ) 3. निम्नवर्ग (प्रोलेटेरियन) और समाज के वह लोग जो नौकरीपेशा नहीं हैं, बेरोज़गार हैं या सेवानिवृत्त हैं उन्हें किस वर्ग में रखा जाये? यह एक बहुत बड़ा प्रश्न है। इस प्रश्न का उत्तर हमें इस प्रकार मिल सकता है कि ऐसे लोगों का भी एक वर्ग बनाया जाये क्योंकि बेरोज़गार या बेकार लोग निम्न तथा मध्यमवर्ग दोनों में हो सकते हैं। जब व्यक्ति कोई व्यवसाय करता है तो उससे आया हुआ धन आय के रूप में प्राप्त करता है अतः यह दोनों कसौटियाँ सामाजिक स्तरीकरण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होती हैं।

यदि हम शिक्षा की दृष्टि से देखें तो स्कूल की शिक्षा को समाप्त करने के पश्चात् विश्वविद्यालयी शिक्षा को सामाजिक स्तरीकरण का आधार बनाया जा सकता है। क्योंकि स्कूली शिक्षा के स्तर तक व्यक्ति समाज के उतार–चढ़ाव व समस्याओं को पूर्ण–रूपेण समझ नहीं पाता है और विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा तक पहुँचते–पहुँचते वह मानसिक रूप से सामाजिक स्तरीकरण की कसौटी पर खरा उतरता है।

सामाजिक प्रतिष्ठा को भी सामाजिक स्तरीकरण की महत्त्वपूर्ण कसौटी कहा जा सकता है। सामाजिक व्यवहार तथा उच्च–निम्न में भेद–भाव प्रतिष्ठा को दृष्टि में रखकर किया जाता है तथा विभिन्न वर्गों का अस्तित्त्व इसी स्तर के द्वारा माना जाता है। पूरे समाज का स्तरीकरण इसी प्रतिष्ठा की भावना से होता है। यह प्रतिष्ठा राजनीतिक व सामाजिक शक्ति के द्वारा पुष्ट होती है। व्यवहार, रहने–सहने का ढंग, सांस्कृतिक अभिव्यक्ति तथा वेश–भूषा आदि एक स्तर के वर्ग को दूसरे स्तर के वर्ग से अलग करती है।

इसके अतिरिक्त सामाजिक दृष्टिकोण को सामाजिक स्तरीकरण की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कसौटी माना जा सकता है। सामाजिक दृष्टिकोण से तात्पर्य अवकाश के कार्य, अन्य व्यक्तियों से सम्बन्ध, नैतिक अभिवृत्ति, सामाजिक व्यवहार आदि से होता है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से अपने नैतिक व सामाजिक सम्बन्ध किस प्रकार निभाता है यह भी बातें स्तरीकरण में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं।

जाति–व्यवस्था वाले समाज को अवरूद्ध समाज कहा जाता है। भारतवर्ष में जाति–व्यवस्था अपने ढंग से सदैव विद्यमान रही है। यह सम्पूर्ण विश्व में एक अलग बात है। भारतीय सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य एक विशेष जाति में जन्म लेता है और पूरे जीवनभर उसकी वही जाति रहती है जब तक वह इस संसार में जीवित रहता

है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि जातियाँ जन्म से ही उच्च मानी जाती हैं इनके अपने विशेष प्रकार के रीति–रिवाज होते हैं तथा शेष शूद्र जाति निम्न मानी जाती है। सामाजिक परिवर्तन के फलस्वरूप यह भी सम्भव है कि कोई व्यक्ति उच्च कुल का होते हुए निम्न कुल के व्यक्ति के यहाँ नौकरी करता हो या धन के मामले में उससे कम हो किन्तु जाति के दृष्टिकोण से वह उच्च ही होगा। समाज में जाति के कारण ही वह अपना सुरक्षित स्थान महसूस करता है।

सामाजिक स्तरीकरण की विभिन्न कसौटी बनाने के बाद भी हम यह कहेंगे कि एक वर्ग के सदस्यों में वर्ग चेतना न होने के कारण हम समाज में पृथक स्थान नहीं बना सकते हैं। अलग–अलग वर्ग के सदस्य कहीं न कहीं सामान्य मनोभावों को रखते है। यह मनोभाव ही एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से जोड़े रखता है।

इन विषयों को ध्यान में रखते हुए जी0डी0एच0 कोल कहते हैं–"यदि कोई एक ही कसौटी बनानी हो और उद्देश्य यह हो कि विभिन्न सामाजिक वर्गों में रखे जाने वाले व्यक्तियों की संख्या का कुछ अनुमान हो सके, तो व्यवसाय किसी भी एक कसौटी से अच्छा हो सकता है।"[42] अतः व्यवसाय अन्य कसौटियों की अपेक्षा अधिक उचित है क्योंकि इससे सामाजिक वर्गों में रखे जाने वाले व्यक्तियों की संख्या का सही अनुमान लगाया जा सकता है। सामाजिक स्तरीकरण की उपर्युक्त कसौटियों को मार्क्सवादी विचारधारा मान्यता नहीं देती है। वे मानते हैं कि उत्पादन की शक्ति पर एक वर्ग का नियंत्रण होता है और एक वर्ग दूसरे वर्ग के आदेश का पालन करता है। इनमें से एक वर्ग 'बुर्जुआ' तथा दूसरा वर्ग 'प्रॉलिटेरिएट' कहलाता है। कार्य सम्पन्न कराने वाला बुर्जुआ कहलाएगा तथा कार्य को सम्पन्न करने वाला 'प्रॉलिटेरिएट' कहलाता है।

डब्ल्यू0जे0एच0 स्प्रॉट के अनुसार–"सामाजिक संरचना को 6 वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। अमेरिका में भी यही स्तर मान्य है–

1. उच्चवर्ग 2. निम्न–उच्चवर्ग 3. उच्च–मध्यवर्ग 4. निम्न–मध्यवर्ग 5. उच्च–निम्नवर्ग 6. निम्न–निम्नवर्ग।"[43] अतः विभिन्न वर्ग मिलकर सामाजिक संरचना का स्वरूप तैयार करते हैं। यह स्तर विदेशों में भी मान्य होता है।

डब्ल्यू0जे0एच0 स्प्रॉट के वर्गीकरण को आधार मानते हुए अलग–अलग वर्गों के प्रतिनिधियों का वर्गीकरण डा0 हेमराज 'निर्मम' इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं– "उच्च–उच्चवर्ग और निम्न–उच्चवर्ग दोनों में अन्तर केवल इतना है कि उच्च–उच्चवर्ग में ऐसे पूँजीवादी आते हैं जिनका सामाजिक उत्पादन के साधनों और स्रोतों पर सम्पूर्ण नियंत्रण हो। जिन्होंने अपनी पूँजी की वृद्धि के लिए कारखानों में असंख्य श्रमिकों को नियुक्त किया हुआ हो। जबकि निम्न–उच्चवर्ग से तात्पर्य है ऐसे वर्ग के लोग जिनका उत्पादन के साधनों पर आँशिक नियन्त्रण हो, जो सामूहिक श्रम अपने वैयक्तिगत लाभ के लिए प्रयुक्त तो करते हों पर उतनी मात्रा में नहीं जितनी की एक उच्च–उच्चवर्ग का सदस्य करता है। उच्च–मध्यवर्ग में दो प्रकार के व्यक्ति आते हैं–

1. ऐसे पूँजीपति जो अल्प मात्रा के उत्पादन के स्वामी हो या उत्पादन में लगे हुए किसी उच्चवर्ग के पूँजीपति के कार्य में उनका थोड़ा सा भाग हो।
2. इसमें प्रशासन सेवा के उच्च अधिकारी तथा कम्पनियों के महानिदेशक, महाप्रबन्धक आदि आते हैं। निम्न–मध्यवर्ग में बुद्धिजीवी लोग, छोटे दुकानदार तथा कुछ अच्छे किसानों को भी रखा जाता है।"[44]

अतः यहाँ उच्च–उच्चवर्ग और निम्न–उच्चवर्ग के व्यक्तियों में अंतर स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। उच्च–उच्चवर्ग का उत्पादन के साधनों पर पूरा नियंत्रण होता है जबकि निम्न–उच्चवर्ग का उत्पादन के साधनों व स्रोतों पर आंशिक नियंत्रण होता है। उच्च–मध्यवर्ग में दो प्रकार के व्यक्तियों को रखा जाता है पहला उत्पादन का स्वामी और दूसरा उस उत्पादन कार्य में लगे हुए उच्चवर्ग का पूँजीपति जिसका उस उत्पादन में थोड़ा सा भाग हो। इसके अतिरिक्त प्रशासनिक सेवा का अधिकारी, महानिदेशक, महाप्रबन्धक आदि उच्च–मध्यवर्ग के अन्तर्गत आते हैं। निम्न–मध्यवर्ग में अच्छे किसान, दुकानदार, बुद्धिजीवी आदि लोग आते हैं।

डॉ0 हेमराज 'निर्मम' के अनुसार–"उच्च–निम्नवर्ग में कारखानों में काम करने वाले तथा दैनिक मज़दूरी पाने वाले श्रमिक आते हैं। ऐसे काश्तकार जो दूसरों की भूमि पर दूसरों के औज़ारों के साथ काम करते हैं और जो उपज का एक भाग लेते हैं या जिनका दिनभर के अपने परिश्रम के उपलक्ष्य में साँझ को मज़दूरी पाकर उपज पर कोई अधिकार नहीं रहता। ऐसे लोग उच्च–निम्नवर्ग के होते हैं। अधिकांश देशों के डाकिये, फोन के लाइनमैन, कुली आदि इस वर्ग में सम्मिलित हैं।"[45] अतः उच्च–निम्नवर्ग में उन व्यक्तियों को रखा जायगा जो दैनिक मज़दूरी पर निर्भर होते हैं, कारख़ाने में काम करते हैं, जो दूसरे की भूमि पर काम करके उपज का एक भाग ख़ुद लेते हैं या दूसरे की भूमि पर काम करने के बाद उसका उपज पर कोई अधिकार नहीं रह जाता है। इसके अतिरिक्त कुली, डाकिये, लाइनमैन आदि उच्च–निम्नवर्ग की श्रेणी में आते हैं। इसके अतिरिक्त उच्च–निम्नवर्ग का

व्यक्ति वह भी होता है जो दिन भर मेहनत करने के पश्चात् दैनिक मज़दूरी प्राप्त करता है।

डॉ0 हेमराज लिखते हैं–"निम्न–निम्नवर्ग में ऐसे लोग आते हैं जिनकी आय का न कोई निश्चित साधन है न कोई निश्चित मात्रा। इनमें ऐसे लोग भी है जिन्हें महीने में कई दिन बेकारी के साथ संघर्ष भी करना पड़ता है मज़दूरी मिलने पर ही जिनके खाने का प्रबन्ध होता है जो आधुनिक नागरिक जीवन की साधारण सुविधाओं से भी प्रायः वंचित है।"[46] अतः निम्न–निम्नवर्ग में ऐसे व्यक्तियों को रखा जाता है जिनकी आय का साधन और मात्रा निश्चित नहीं होती है। इस वर्ग में ऐसे व्यक्ति भी आते हैं जिन्हें महीने के कई दिनों में बिना काम के गुज़रना पड़ता है, जिनका खान–पान मज़दूरी मिलने पर ही होता है और जो आधुनिक जीवन की सुख–सुविधाओं से दूर रहते हैं। इस प्रकार उच्च–उच्चवर्ग, उच्च–निम्नवर्ग और निम्न–निम्नवर्ग को उनके कार्य, व्यवसाय तथा आय के साधनों और उनसे प्राप्त होने वाली आय के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। जिसका मुख्य कारण आर्थिक आधार होता है।

प्रसिद्ध उपन्यासकार इलाचन्द्र जोशी ने अपने प्रमुख उपन्यास 'निर्वासित' में एक पात्र प्रतिमा के माध्यम से समाज को 5 वर्गों में विभाजित किया है। प्रतिमा महीप को पत्र लिखकर बताती है कि मैंने अपने दृष्टिकोण से समग्र समाज को मोटे तौर पर पाँच वर्गों में विभाजित किया है–

1. साम्राज्यवादी अधिकारी वर्ग, जिसके लिए इस देश की जनता का कोई अस्तित्व ही नहीं है और जो व्यापक रूप से सुसंगठित सामूहिक उपायों से

देश का मूल सत्व हरण करके अपने साम्राज्य की जड़ों को पुष्ट करना ही अपना एकमात्र ध्येय समझता है।

2. पूँजीपति–ज़मीदार वर्ग, जो देश के उस खून और मासपिण्ड के संचय में व्यस्त रहता है जो साम्राज्यवादी शोषण के बाद शेष रहता है।
3. उच्च–मध्यवर्ग, जो पहले दोनों वर्गों से इतने टुकड़े पा लेता है जितने से वह अपने 'मौलिक सम्मान' की रक्षा कर सके बुर्जुआ शब्द की ध्वनि से जो बदबू जो सड़ान निकलती है वह सब इस तीसरे वर्ग में कूट–कूटकर भरी हुई है।
4. निम्न–मध्यवर्ग, वास्तव में यही वर्ग है, समस्त समाज का अन्तः केन्द्र न्यूक्लीअस.....। वास्तव में शोषकों के अत्याचारों से यह वर्ग निम्नतम वर्ग से कुछ कम पीड़ित नहीं है, पर निम्नतम वर्ग से उसमें यह अन्तर है कि वह बहुत अधिक अनुभूतिशील और साथ ही बुद्धिवादी है।
5. पाँचवा और अन्तिम वर्ग है जनसाधारण का किसानों, मज़दूरों, भिखारियों, और भूखों का वर्ग।"[47]

हम साम्राज्यवादी अधिकारी वर्ग, पूँजीपति, ज़मींदार वर्ग, उच्च–मध्यवर्ग, निम्न–मध्यवर्ग, तथा जनसाधारण वर्ग को उनके कार्य, व्यवसाय तथा सामाजिक व्यवहार के अनुसार विभाजित कर सकते हैं साथ ही जोशी जी एक रचनाकार के रूप में समाज का ताना–बाना बुनते हैं। उसका वे कोई सामाजिक वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत नहीं करते।

पूँजीवादी देश

कार्ल मार्क्स ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'पूँजी' में लिखा है–"इस पुस्तक में मेरी गवेषणा का विजय पूँजीवादी उत्पादन पद्धति और तदानुकूल उत्पादन तथा विनिमय सम्बन्ध है। भौतिक सम्पदा के उत्पादन तथा वितरण के नियामक नियमों की खोजकर मार्क्स ने प्रमाणित किया कि पूँजीवाद के अवश्यभावी विनाश और समाजवाद की विजय के मूल कारण समाज की आर्थिक परिस्थितियों में ही निहित है।"[48] अतः समाजवादी व्यवस्था व उसके मूल में समाज की आर्थिक परिस्थितियाँ निहित होती हैं।

मार्क्स के अनुसार–"पूँजीवाद की विशेषता है माल उत्पादन का एकच्छत्र बोलबाला। पूँजीवादी समाज के सभी अन्तर्विरोध माल में, माल के साथ माल के विनिमय में ही निहित है।"[49] अतः समाज की आर्थिक परिस्थितियों को माल के साथ तथा माल के विनिमय में निहित माना जायगा।

पूँजीवादी व्यवस्था तथा पूँजीवादी देशों को मध्यवर्गीय विकास के योगदान में स्पष्ट करते हुए डॉ0 मंजुलता सिंह लिखती हैं–"अंग्रेज़ी शिक्षा के साथ ही भारतीय मध्यवर्ग के विकास में पूँजीवादी व्यवस्था का विशेष योगदान रहा है, इस दिशा में अन्य पूँजीवादी देशों की अपेक्षा भारत की स्थिति कुछ विशिष्ट है क्योंकि भारत जो शताब्दियों तक परतन्त्र रह चुका है उसमें पूँजीवादी व्यवस्था भी अन्य देशों की समकक्षता में उतने स्वस्थ्य ढंग से विकसित न हो सकी। परिणामस्वरूप इस अर्द्ध विकसित पूँजीवादी व्यवस्था का परिणाम भारतीय मध्यवर्ग पर अपने अधकचरे रूप में पड़ा, जिसके कारण भारतीय मध्यवर्ग में निराशा और असंतोष की भावना अपेक्षाकृत

अधिक प्रबल है।"[50] अतः अंग्रेज़ी शिक्षा के साथ पूँजीवाद का मध्यवर्ग के विकास में योगदान तो रहा किन्तु अन्य देशों की अपेक्षा भारत में पूँजीवादी व्यवस्था अधिक विकसित न हो पाने के कारण मध्यवर्ग को निराशा का सामना करना पड़ा।

पूँजीवादी देशों तथा पूँजीवादी व्यवस्था में मध्यवर्ग के विकास की दृष्टि से हुमायूँ कबीर लिखते हैं–"सभी जगह मध्यवर्ग यह अनुभव करने लगा है कि उसका कोई भविष्य नहीं है। भारत में उसकी दशा और भी दयनीय है। पूँजीवाद के विकास ने अन्य देशों में सामाजिक अर्थव्यवस्था में उनके लिए स्थान बना दिया है पर भारत में पूँजीवाद को अंग्रेज़ों ने राजनीतिक और आर्थिक दबावों के कारण बढ़ने नहीं दिया है इस पर भी समाज की अन्य श्रेणियों का झुकाव मध्यवर्ग की अपेक्षाकृत अधिक अच्छी दशा देखकर उसकी ओर बराबर ही रहा। मध्यवर्ग इतना बढ़ा कि मौजूदा आर्थिक स्थिति इस संस्था को सँभाल न सकी।"[51] अतः अन्य पूँजीवादी देशों की अपेक्षा भारतीय पूँजीवादी व्यवस्था ने यहाँ के मध्यवर्ग को बहुत दूर तक प्रभावित किया है जिस पर राजनीतिक व आर्थिक दबाव सदैव से पड़ता आया है साथ ही उसका सामाजिक अर्थव्यवस्था पर भी प्रभाव पड़ा है।

पूँजीवादी व्यवस्था तथा मध्यवर्ग को दृष्टि में रखते हुए पवन कुमार वर्मा का कथन है–"भारत ने 1991 में आर्थिक सुधारों का अभियान शुरू किया और अर्थव्यवस्था के दरवाज़े खोलकर विदेशी पूँजी के लिए पलक–पावड़े बिछा दिए। यही वह प्रक्रिया थी जिसके कारण मध्यवर्ग पर नए सिरे से रोशनी पड़ी। उसके संख्यात्मक आकार पर बहस शुरू हो गयी। उसकी उपभोग सम्बन्धी पसन्द–नापसन्द का आकलन किया जाने लगा और अंदाज़ा लगाया गया कि आने वाले वर्षों में मध्यवर्ग किस रफ़्तार से बढ़ेगा। लेकिन परिवर्तन और उसके पूर्वानुमान के

इस खुशनुमा माहौल में एक तथ्य अनदेखा कर दिया गया कि मध्यवर्ग कोई अचानक रातों–रात प्रकट नहीं हो गया था। उपभोक्तावादी लालसाओं से भरे हुए परभक्षी के तौर पर मान्यता मिलने से पहले भी इस वर्ग का एक अतीत और एक इतिहास था।"[52]

उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए यह स्पष्ट है कि 1991 के प्रारम्भिक आर्थिक सुधारों ने अर्थव्यवस्था तथा विदेशी पूँजी को बहुत अधिक प्रभावित किया जिसका मध्यवर्ग पर गहरा प्रभाव पड़ा, इसके अतिरिक्त हमारे लिए यह भी महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि मध्यवर्ग कोई रातों–रात आकर नया वर्ग नहीं बन गया था बल्कि इस वर्ग का अपना वजूद और इतिहास रहा है। जिसे हम अनदेखा नहीं कर सकते है। यही कारण है कि वर्तमान समय में मध्यवर्ग की संख्या अन्य वर्गों की अपेक्षा कहीं अधिक बड़ी है अर्थात् मध्यवर्ग समाज का सबसे बड़ा वर्ग है।

सन्दर्भ :–

1. मुखर्जी, डॉ0 रवीन्द्रनाथ, अमृकल, डॉ0 भरत, समाज शास्त्र के मूल तत्त्व, 26वां संस्करण, पृष्ठ 239
2. वही, पृष्ठ 239
3. वही, पृष्ठ 239
4. वही, पृष्ठ 239
5. महाजन, डॉ0 संजीव, भारतीय समाज, 2004, अर्जुन पब्लिकेशन हाउस, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 43
6. वही, पृष्ठ 43
7. वही, पृष्ठ 43
8. वही, पृष्ठ 43
9. 'निर्मम', डॉ0 हेमराज, हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग, 1918, विभू प्रकाशन, साहिबाबाद, पृष्ठ 34
10. उपाध्याय, भगवत शरण, भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण, पृष्ठ, 91
11. वही, पृष्ठ 91
12. छिब्बर, वाई0पी0, फ्रॉम कास्ट टू क्लास (ए स्टडी ऑफ द इंडियन मिडिल क्लासेज़) 1968, पृष्ठ 36।
13. वही, पृष्ठ 36
14. वही, पृष्ठ 36
15. वही, पृष्ठ 36

16. आहूजा राम, आहूजा मुकेश, समाजशास्त्र विवेचना एवं परिपेक्ष्य, 2008, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, दिल्ली, पृष्ठ, 187–188

17. वही, पृष्ठ 187–188

18. वही, पृष्ठ 188

19. दोषी एल0एस0, जैन सी0पी0, भारतीय सामाजिक व्यवस्था, 2007, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, नई दिल्ली, पृष्ठ 91

20. वही, पृष्ठ 92

21. वही, पृष्ठ 92

22. वही, पृष्ठ 92

23. वही, पृष्ठ 93

24. वही, पृष्ठ 93

25. वही, पृष्ठ 94

26. वही, पृष्ठ 94

27. महाजन, डॉ0 संजीव, भारतीय समाज, 2004, अर्जुन पब्लिकेशन हाउस, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 134,

28. वही, पृष्ठ 134

29. वही, पृष्ठ 135

30. 'निर्मम', डॉ0 हेमराज, हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग, 1978, विभू प्रकाशन साहिबाबाद, पृष्ठ 19–20

31. मिश्र, डॉ0 बी0बी0, द इन्डियन मिडिल क्लासेज़, 1961, ऑक्फोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस लंदन, न्यूयॉर्क, बॉम्बे, पृष्ठ 2

32. कोल, जी0डी0एच0, स्टडीज़ इन क्लास स्ट्रक्चर, 1955 पृष्ठ 1

33. मैस, हेनरी, ए0 सोशल स्टडीज़, 1942, पृष्ठ 85–86

34. महाजन, डॉ0 संजीव, भारतीय समाज, 2004, अर्जुन पब्लिकेशन हाउस, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 134

35. आहूजा राम, आहूजा मुकेश, समाजशास्त्र विवेचना एवं परिपेक्ष्य, 2008, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, दिल्ली, पृष्ठ 181–182

36. वही, पृष्ठ 181–182

37. वही, पृष्ठ 182–183

38. वही, पृष्ठ 184

39. कोल, जी0डी0एच0, स्टडीज़ इन क्लास स्ट्रक्चर, 1955, पृष्ठ 4

40. लेविस रॉय, माडे ए0, द इंगलिश मिडिल क्लास, 1955, पेग्विन बुक्स मेलबर्न, लंदन, ब्लाटीमोर, पृष्ठ 15

41. स्प्रॉट, डब्ल्यू0 जे0एच0, सोश्योलोजी, 1959, पृष्ठ 58

42. कोल, जी0डी0एच0, स्टडीज़ इन क्लास स्ट्रक्चर, 1955, पृष्ठ 8

43. स्प्रॉट, डब्ल्यू0जे0एच0, सोश्योलॉजी, 1959, पृष्ठ 105

44. 'निर्मम', डा0 हेमराज, हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग, अगस्त, 1978, विभू प्रकाशन, साहिबाबाद, पृष्ठ 21

45. वही, पृष्ठ 21

46. वही, पृष्ठ 21

47. जोशी, इलाचन्द्र, निर्वासित, 1946, पृष्ठ 367–368

48. मार्क्सवादी, लेनिनवादी शिक्षा माला, समाज विज्ञान, 1976, प्रगति प्रकाशन मास्को, पृष्ठ 127

49. वही, पृष्ठ 127

50. सिंह, डॉ0 मंजुलता, हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग, 1971, आर्य बुक डिपो 30, नाईवाला, करौलबाग, नई दिल्ली, पृष्ठ 12

51. कबीर, हुमायूँ, द इण्डियन हेरिटेज, 1960, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बॉम्बे, पृष्ठ 114

52. वर्मा, पवन कुमार, भारत के मध्यवर्ग की अजीब दास्तान, 1999, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना, पृष्ठ 15, (प्राक्कथन)